इकाई 7 असमान संधि प्रणाली–चीन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इन बातों की जानकारी मिलेगी :

- चीन और पश्चिमी ताकतों तथा जापान के बीच 19वीं शताब्दी में होने वाली "आसमान संधियां",
- सन् 1911 में चिंग वंश की समाप्ति तक चीन में साम्राज्यवादी विस्तार के बदलते स्वरूप, और
- इस दौर में विदेशी ताकतों के साथ चीन और विभिन्न चीनी संस्थाओं के संबंधों की प्रकृति।

7.1 प्रस्तावना

सन् 1842 में नानकिंग संधि पर हस्ताक्षर होने के समय से पूरी एक शताब्दी तक, चीन की पश्चिमी ताकतों और जापान के साथ कई संधियाँ हुई। इन्हें "आसमान संधियों" के नाम से जाना गया, क्योंकि बड़ी ताकतों ने अपनी श्रेष्ठता का इस्तेमाल करके एक कमज़ोर और टूटते चीन पर इन संधियों को थोपा था।

भारत जैसे देश के विपरीत, चीन किसी एक ताकत या ताकत-समूह का कभी पूरी तौर पर उपनिवेश नहीं बना। चीन को विदेशी व्यापार और विस्तार के लिए जबरदस्ती खोल तो दिया गया, और उसे विदेशी ताकतों को एक के बाद एक रियायतें देने को बाध्य भी होना पड़ा, लेकिन उसकी संप्रभुता पर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। विदेशी ताकतों की मांगों का प्रतिरोध करने की शक्ति न होने पर भी, इन मांगों को संधियों का रूप दिया गया, जिन्हें दो प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों ने तैयार किया और उनपर आपसी सहमति बनाई। जैसे उपनिवेशवाद के साथ भारत के लंबे संबंध का प्रतीक अंग्रेज़ी राज है, ठीक वैसे ही उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के हाथों चीन के एक शताब्दी तक अपमान का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीक ये असमान संधियां रहीं। 1947 से पहले जिस तरह से भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य अंग्रेज़ी राज को उखाड़ फेंकना था, उसी तरह 1940 के दशक तक चीनी राष्ट्रवाद का मुख्य ध्यान असमान संधियों के विरुद्ध संघर्ष करना था। इस इकाई में विभिन्न असमान संधियों पर, जिन स्थितियों में उन्हें थोपा गया, उन स्थितियों पर और चीन पर पड़ने वाले उनके प्रभाव पर, चर्चा की गई है।

7.2 सहयोग का दौर, 1860-1870

1850 के दशक के अंतिम वर्षों में ऐसा दिखाई पड़ा मानों पश्चिमी ताकतें चिंग वंश को समाप्त करने के लिए सक्रिय रूप से काम कर रही थीं। दूसरे अफीम युद्ध के दौरान शाही ग्रीष्म महल को जला दिये जाने और त्येनसिन तथा राजधानी पीकिंग पर पश्चिमी ताकतों के हमले की घटनाएं चिंग वंश के लिए एक गहरा आघात थीं। उतना ही महत्त्वपूर्ण था महान ताईपिंग विद्रोह (देखिए इकाई 13, खंड 4) के प्रति पश्चिमी ताकतों का दृष्टिकोण। ताईपिंग विद्रोह उस समय मध्य और दक्षिणी चीन के अधिकाशं भागों में भड़का हुआ था। औपचारिक तौर पर इस गृह युद्ध में पश्चिमी ताकतों की नीति तटस्थता की थी। लेकिन व्यवहार में, उनकी सहानुभूति और समर्थन विद्रोहियों के साथ ही था।

लेकिन, 1860 के बाद यह प्रवृत्ति समाप्त हो गई। त्येनसिन की संधि में चिंग सरकार से भारी रियायतें हासिल कर लेने के बाद (देखिए इकाई 6), पश्चिमी ताकतों को इस बात का अहसास हो गया कि उनके हितों का सबसे बढ़िया साधन तब हो सकता था जबकि वह वंश बना रहे जिसने ये रियायतें उन्हें दीं। इस तरह पश्चिमी नीति रात ही रात में विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति को बदलकर ताईपिंग विद्रोह को दबाने का प्रयास कर रही चिंग सरकार पर दबाव डालना भी छोड़ दिया और उसकी जगह उन्होंने पहले ही हासिल कर रखी रियायतों का बढ़िया से बढ़िया उपयोग करना शुरू कर दिया। विदेशी ताकतों ने चीन के आधुनिक बनने के प्रयासों में भी सहयोग देना शुरू कर दिया। चिंग सरकार का समर्थन करने की इस नई नीति का एक संभावित कारण था उस समय चीन में स्थित सबसे मज़बूत विदेशी ताकत, अंग्रेज़ों की 1857 में भारत में उनके औपनिवेशिक राज को धक्का लगाने के बाद, समुद्र पार अपनी राजनीतिक और सैनिक गतिविधियाँ बढ़ाने की इच्छा का न होना।

पश्चिमी ताकतों और उनके पीकिंग स्थित राजनयिकों की यह समझौतावादी मानसिकता चीन के शासकों में एक नई मानसिकता के मुकाबले थी। 1860 में पश्चिमी ताकतों के साथ बातचीत, और 1864 में सम्पन्न होने वाले ताईपिंग के दमन ने कुछ उच्च-स्तरीय अधिकारियों को महत्त्वपूर्ण बना दिया जो इतने प्रचंड तौर पर विदेश-विरोधी नहीं थे, और जिनका यह विश्वास था कि चीन को शांति के एक दौर की आवश्यकता थी, जिसमें वह अपनी खोई स्थिति को फिर से हासिल कर और अपने आपको मज़बूत कर सके। इन अधिकारियों में ताइपिंग दमन अभियान के प्रसिद्ध नेता, जेंग गुओफान और ली हांग झांग, और मांचू राजकुमार गांग शामिल थे। ये प्रमुख राजनेता पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी और पश्चिमी कूटनीति से भी कुछ बातें सीखने में विश्वास रखते थे, और सिद्धांत रूप में उन्हें कुछ क्षेत्रों में पश्चिमी ताकतों के साथ एक सीमित सहयोग से कोई चिढ़ नहीं थीं।

दोनों पक्षों में हृदय परिवर्तन के इस बदलाव का परिणाम तथाकथित "सहकारी नीति" के रूप में सामने आया, जिससे चीन-पश्चिम संबंधों में यथा स्थिति को पूरे दस वर्षों तक बिना किसी विघ्न के बनाए रखना सुनिश्चित हो गया। इसी दौर में चीन और पश्चिमी ताकतों के बीच आदान-प्रदान को संस्था का रूप देने का काम हुआ।

7.2.1 संधिगत बंदरगाह

पहले अफीम युद्ध का एक प्रमुख परिणाम था मूल कैंटन समेत पाँच बंदहगाहों का विदेशी व्यापार और आवास के लिए खोला जाना। इन बंदरगाहों को बाद में "संधिगत बंदरगाह" के नाम से जाना गया। दूसरे अफीम युद्ध की समाप्ति करने वाली त्येनसिन संधि से संधिगत बंदरगाहों की संख्या बढ़कर सोलह हो गई, और 1876 में चीन तथा ब्रिटेन के बीच ज़िफू समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद इनमें पाँच बंदरगाहों को और शामिल कर लिया गया। इस तरह, चीन के समुद्र तट का पूरा हिस्सा और उसके प्रमुख जलमार्ग, यांगज़ी नदी सब पर विदेशी व्यापार के ये केंद्र बन गए।

ये संधिगत बंदरगाह, और विशेष तौर पर उनमें बनने वाले वे "रियायती क्षेत्र" जिनमें विदेशी साथ-साथ रहते थे, 19वीं शताब्दी के मध्य से 20वीं शताब्दी के मध्य तक चीन के विदेशों के साथ संबंधों की एक विशिष्ट विशेषता बन गए। क्षेत्र के हिसाब से देखा जाए ता वे बहुत अधिक नहीं थे। लेकिन, आर्थिक, राजनीतिक और न्यायिक दृष्टि से वे चीन की प्रभुसत्ता पर एक काफी बड़ा अतिक्रमण थे।

विदेशिया को मिले रियायती क्षेत्रों में विदेशी अपने आप पर और उस क्षेत्र में रहने वाली चीनी जनता पर शासन करते थे। कई संधिगत बंदगाहों में, रियायती क्षेत्रों के नाम उस क्षेत्र में हावी विदेशी ताकत की राष्ट्रीयता के नाम पर पड़े हुए थे (जैसे, रियायती क्षेत्र. फ्रांसीसी

रियायती क्षेत्र आदि)। फिर भी, सबसे बड़े संधिगत बंदरगाह – शंघाई – में अंग्रेज़ी और अमेरिकी रियायती क्षेत्रों ने 1883 में विलय होकर प्रसिद्ध "अंतर्राष्ट्रीय रियायती क्षेत्र" बनाया।

सामान्य रूप से "विदेशी रियायती क्षेत्रों" का शासन एक नगर परिषद् चलाती थी, जिसका चुनाव एक निश्चित मूल्य से ऊपर की सम्पत्ति रखने वाले विदेशी करते थे। इस परिषद की वाणिज्य दूतों को सहमति लेनी होती थी, जो संधिगत बंदरगाहों में विदेशी ताकतों के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि थे। नगर परिषद् अपने रियायती क्षेत्रों में रख-रखाव के लिए कर लगाती थी, उसका अपना पुलिस बल था, और सामान्य तौर पर वह चीनी सरकार के किसी हस्तक्षेप के बिना अपने पुलिस संबंधी मामलों को खुद संचालित करती थी। विदेशी रियायती क्षेत्रों में रहने वाले चीनी स्पष्ट तौर पर दूसरे दर्जे के नागरिक होते थे, जिनपर भारी कर लगाये जाते थे लेकिन उन्हें कोई अधिकार नहीं दिए जाते थे। कुछ जगहों पर तो उन्हें कुछ सड़कों, पार्कों आदि के इस्तेमाल पर भी पाबंदी थी, जो केवल विदेशियों के लिए आरक्षित थे।

विदेशी रियायती क्षेत्रों में वाणिज्यदूतीय अदालतें थीं,। ये विदेशी अदालतें थीं जिनमें विदेशी अपराधियों पर उनके ही कानूनों के मुताबिक अतिरिक्त क्षेत्रीयता के सिद्धांत के अनुसार मुकद्मा चलाया जाता था (देखिए इकाई 6) यहाँ तक कि विदेशी रियायती क्षेत्रों के चीनी बाशिंदों पर भी चीनी अदालतों में मुकद्मा नहीं चलाया जाता था, बल्कि उन्हें चीनी और विदेशी न्यायाधीशों वाली मिश्रित अदालतों में हाज़िर होना होता था। कहना आवश्यक नहीं होगा कि जब कभी मुकदमा चीनी और विदेशी के बीच होता था, चीनी भारी नुकसान में रहता था – ऐसा केवल विदेशी न्यायाधीशों के पक्षपात के कारण नहीं होता था, बल्कि इसलिए भी होता था कि चीनी लोग आम तौर पर विदेशी कानूनी कार्यवाही को समझ नहीं पाते थे।

समय बीतने के साथ, विदेशी रियायती क्षेत्रों ने अपनी अलग संस्कृति और जीवन शैली का विकास कर लिया, जो पूरी तौर पर चीन की संस्कृति और जीवन शैली से कटी हुई थी। सामान्य स्तर पर, ये रियायती क्षेत्र 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों के चीन की गरीबी और उथल-पुथल के बीच धन के ऐसे विदेशी अंतःक्षेत्र थे, जिन्हें अपेक्षाकृत स्थिरता और विशेष अधिकार प्राप्त थे। उनके पीछे पास ही लंगर डाली विदेशी ताकतों की तोप नौकाएं थीं।

9. हौंग व्यापारी का आलीशान बंगला

7.2.2 विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय

संधिगत बंदरगाहों की एक सबसे प्रमुख विशेषता, और आधुनिक चीन के विदेशी ताकतों के साथ संबंध की सबसे अनूठी संस्था थी विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय।

सन् 1854 में, जब शंघाई पर विद्रोहियों ने कब्ज़ा कर लिया और चीनी सीमा-शुल्क अधीक्षक को उसके पद से निकाल बाहर किया गया तो शंघाई में नियुक्त विदेशी वाणिज्य दूतों ने इकट्ठा होकर एक अस्थायी उपाय के तौर पर बकाया सीमा-शुल्क जमा करने का काम अपने जिम्मे ले लिया। लेकिन, शांति कायम हो जाने के बाद भी यह प्रथा चलती रही और इसे एक स्थायी संस्था का रूप दे दिया गया। पश्चिमी ताकतों को लगा कि यह उनके हित में होगा क्योंकि इससे यह सुनिश्चित होगा कि दूसरे अफीम युद्ध के बाद उन्होंने जो कम शुल्कों को हासिल किया था, उसका सम्मान किया जाएगा और स्थानीय चीनी अधिकारी अनुचित उगाही नहीं करेंगे, चिंग सरकार ने भी इसे जारी रखना पसंद किया, क्योंकि इससे यह सुनिश्चित होता था कि राजस्व की एक बड़ी राशि लगातार सीधे उसके खजाने में आएगी। इसलिए इस व्यवस्था को नियमित कर दिया गया। विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय का मुख्यालय 1865 में शंघाई से पीकिंग चला गया। प्रत्येक संधिगत बंदरगाह में, एक विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षक होता था, जिसके अधीन विदेशी और चीनी कर्मचारियों का एक बड़ा और सुप्रशिक्षित दल होता था। इसका मुख्य काम सीमा-शुल्क की वसूली और उसे जमा करना ही था। लेकिन धीरे-धीरे इसने अपना काम बढ़ाकर उसमें बंदरगाहों और नदियों के रख-रखाव, और भौगोलिक सर्वेक्षण आदि का काम भी शामिल कर लिया। चिंग सरकार को वैसे विदेशी निरीक्षणालय की गतिविधि से आर्थिक लाभ तो होता था, फिर भी यह आर्थिक और प्रशासनिक मामलों में चीन की प्रभुसत्ता के और भी भंग होने का प्रतीक था।

विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय की एक दिलचस्प विशेषता यह थी कि इसके तमाम कर्मचारी, विदेशी भी, औपचारिक रूप से चीनी सरकार के नौकर थे, अपने देशों के प्रतिनिधि नहीं थे। यहाँ तक कि 40 वर्षों तक इस सेवा का निर्देशन करने वाले जबरदस्त प्रभाव वाले अंग्रेज सर रॉबर्ट हार्ट ने अपने आपको हमेशा चिंग सरकार का एक वफादार कर्मचारी माना। जे.के. फेयरबैंक जैसे कुछ आधुनिक विद्वानों ने इस घटना का विवरण देने के लिए ''सइनार्की'' (चीनी राजकता) शब्द गढ़ा है। उन्होंने इसे एक प्रकार के साम्राज्यवादी कब्जे के रूप में नहीं, बल्कि चीनी साम्राज्य और विदेशी व्यक्तियों के बीच एक प्रकार से सहयोग के रूप में देखा है, जिसकी जड़ें पारंपरिक चीनी ढंग की सरकार में गहरे जमी थीं। फिर भी, यह याद रखना होगा कि 19वीं शताब्दी में चीन और विदेशी साम्राज्यवाद के बीच संबंध का अपना अनूठा और अभूतपूर्वक चरित्र था। चीनी साम्राज्यवाद इस दौर में पतन पर था, और विदेशी ताकतें न केवल सैनिक, बल्कि आर्थिक और प्रौद्योगिक दृष्टि से भी हावी थीं। उभरते चीनी राष्ट्रवादियों के लिए, बड़ी गिनती में विदेशियों के द्वारा अर्थव्यवस्था और अन्य मामलों को संचालित करना उतनी ही शर्मनाक बात थी, जितनी विदेशी ताकतों का उनकी नदियों और तट-रेखा पर गश्त लगाना। विशेष तौर पर चिंग सरकार के सीमा-शुल्क राजस्व पर और भी निर्भर हो जाने के कारण, और हर्जाने तथा कर्ज़ों के ज़रिए चीनी धन के विभिन्न विदेशी ताकतों के पास गिरवी रख जाने के कारण, सीमा-शुल्क राजस्व पर विदेशियों का नियंत्रण बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया। इससे यह सुनिश्चित हो गया कि चीन संधि की शर्तों को पलट नहीं सकता, और उसके धन का एक बढ़ता हिस्सा विदेशों को चला जाएगा।

7.2.3 चीन में आधुनिक कूटनीति की शुरुआत

दूसरे अफीम युद्ध में चीन की जो जबरदस्त पराजय हुई, उससे कुछ प्रमुख चीनी राजनेताओं को यह विश्वास हो गया कि विदेशी ताकतों से निपटने के लिए चीनी संस्थाओं और कार्यप्रणाली को पुनर्गठित करना होगा। उन्होंने पश्चिम के बारे में और अधिक जानने की आवश्यकता को, विशेष तौर पर आधुनिक अंतराष्ट्रीय कानून के सिद्धांत और व्यवहार को समझने तथा उसमें माहिर होने की आवश्यकता को महसूस किया। मांचू राजकुमार गांग इस प्रवृत्ति के पीछे काम करने वाला प्रमुख व्यक्ति था, महापार्षद बेनाशियांग ली हागझांग और दूसरे उच्च-स्तरीय अधिकारियों ने भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ये राजनेता अंतर्राष्ट्रीय कानून को एक ऐसे हथियार के रूप में देखने लगे, जिसका इस्तेमाल चीन की प्रभुसत्ता पर दूसरी ताकतों के और आगे मनमाने अतिक्रमण होने रोकने के लिए किया जा सकता था। उन्होंने महसूस किया कि विद्यमान (असमान) संधियों को एक ऐसी सीमा के रूप में बनाए रखा जाये जिसके आगे कोई रियायतें नहीं दी जाएं। उनके प्रयासों को

प्रमुख पश्चिमी ताकतों और उस समय पीकिंग में स्थित उनके प्रतिनिधियों में व्याप्त सहयोग की मनोस्थिति से प्रोत्साहन मिला।

इस तरह, राजकुमार गांग और वेनशियांग की सिफारिश पर, अदालत मार्च 1861 में एक किस्म का दफ्तर खोलने को सहमत हो गई, जिसे जोंगनी यामेन कहा गया। कई उच्च-स्तरीय राजनेताओं की अध्यक्षता वाले इस दफ्तर का काम उन विभिन्न विभागों को निर्देशन देना था जिन्हें बड़ी पश्चिमी ताकतों से निपटने और तट रक्षा का काम सौंपा गया था। विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय भी 1860 तक इस दफ्तर से सम्बद्ध रहा, यह वह प्रमुख संस्था थी जिसका संबंध विदेश नीति को अमल में लाने के काम से था।

जोंगली यामेन के आलावा, उत्तरी और दक्षिणी बंदरगाहों के लिए दो व्यापार अधीक्षकों को रखने की व्यवस्था भी त्येनसेन और शंघाई में कायम की गई। जब चुस्त ली हांगझांग 1870 में त्येनसिन में व्यापार अधीक्षक बना, तब वह विदेशी ताकतों से संबंधित इतने अधिक मामलों में उलझा था कि अंत में उसने विदेशी मामलों के संचालन में जोंगनी यामेन को पीछे छोड़ दिया।

''ज़ोंगली यामेन'' से ही जुड़ा इस दौर का एक और प्रवर्तन था 1862 में ''तोंगवेन गुआन'' (Tong Wen Guan) की स्थापना। शुरू में इसकी स्थापना चुनिंदा चीनी और मांचू विद्यार्थियों को पश्चिमी भाषाओं का प्रशिक्षण देने के इरादे से की गई थी, लेकिन अंत में इसमें आधुनिक भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, शरीर विज्ञान आदि को भी शामिल कर लिया गया। इसने पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय कानून, दर्शन, राजनीतिक अर्थव्यवस्था और विज्ञान के अनुवाद भी प्रकाशित करना शुरू कर दिया। इस विद्यालय के प्रधान और अन्य अध्यापक विदेशी प्रोफेसर और विद्वान थे।

त्येनसिन की संधि (1860) में इस दस वर्ष की अवधि के बाद संधि के संशोधन का प्रावधान था। 1860 के दशक के अंतिम वर्ष आते-आते ''जोंगली यामेन'' जो की एक दफ्तर था अपने आपको अंतर्राष्ट्रीय कानून और पश्चिमी ढंग की कूटनीति में इतना दक्ष महसूस करने लगा कि उसने संधि में संशोधन के लिए इन आशा से सक्रिय दबाव डाला कि इसका परिणाम पहले की अपेक्षा चीन के लिए कहीं अधिक अनुकूल होगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, उसने पीकिंग में हमदर्द अमेरिकी प्रतिनिधि, ऐंसन बर्लिंगम का यह प्रस्ताव मान लिया कि चिंग सरकार की ओर से पश्चिमी देशों की एक सोद्देश्य यात्रा की जाए जिसमें उनसे यह आग्रह किया जाए कि वे संधि पर फिर से बातचीत करें। कुल मिलाकर, बर्लिंगेम मिशन का हर जगह स्वागत किया गया। इससे जोंगली यामेन और चिंग सरकार की आशाएं बढ़ीं। लेकिन ये आशाएं जल्दी ही चकनाचूर हो गईं। 1870 में, अंग्रेजी सरकार ने संधियों के संशोधन के लिए आयोजित चिंग सरकार की सहमति वाले एलकॉक अधिवेशन को रद्द कर दिया। इस कार्यवाही से चिंग सरकार और पश्चिमी ताकतों के बीच सहयोग के दौर का अंत हो गया, और एक ताज़ा संघर्ष और टकराव के दौर की शुरुआत हुई।

बोध प्रश्न 1

1) वे कौन-सी संस्थाएं थीं, जिन्होंने 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में विदेशियों के साथ चीन के व्यवहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय के कार्यों की लगभग पांच पंक्तियों में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में कौन-से सही (√) हैं और कौन-से गलत (×)?

i) प्रमुख चीनी राजनेता चीन की प्रभुसत्ता का अतिक्रमण रोकने की अंतर्राष्ट्रीय कानून से अपेक्षा करते थे।

ii) अंग्रेज़ों ने चीनियों का संधियों के संशोधन का प्रस्ताव ठुकरा दिया।

iii) सबसे बड़ा संधिगत बंदरगाह शंघाई था।

iv) त्येनसिन की संधि में 10 वर्षों की अवधि के बाद इसके संशोधन का कोई प्रावधान नहीं था।

7.3 बढ़ते विदेशी अतिक्रमण: मनमुटाव और टकराव, 1870-1900

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पच्चीस वर्षों में बड़ी ताकतों के साथ चीन के संबंधों में भारी गिरावट आई। इस दौर में, इन ताकतों ने चीन के विरुद्ध अपने आक्रामक रवैये को फिर से बना लिया, जिसके परिणामस्वरूप 1900 में बॉक्सर विद्रोह के बाद पीकिंग पर मिला-जुला सैनिक हमला हुआ (देखिए इकाई 14, खंड 4) और चीन विदेशी प्रभाव तथा प्रभुत्व वाले विभिन्न क्षेत्रों में बंट गया। इन घटनाओं का आवेश केवल चीन के भीतर ही नहीं था। 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में ज़ार की अधीनता वाले रूस और ब्रिटेन में भी एक जबरदस्त विस्तारवादी लहर थी, और यही स्थिति तीसरे गणराज्य के फ्रांस की भी थी। गृह युद्ध की व्यस्तता से मुक्त हुआ अमेरिका पूर्व की ओर दिलचस्पी से देखने लगा। 1870 में अपने एकीकरण के बाद जर्मनी और मेइजी पुनरुत्थान के बाद का जापान भी जबरदस्त ताकतों के रूप में उभरे। उन्होंने समुद्र पार के बाज़ारों या व्यापार और क्षेत्रों पर भी लोभी निगाह रखी। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इन तमाम ताकतों की विस्तारवादी इच्छाओं का जमाव चीन पर हुआ जो अभी तक किसी एक ताकत के उपनिवेशवादी फंदे में नहीं फंसा था, और जिसके लिए अपने आपको संकट तथा पतन की प्रक्रिया से निकालना असंभव दिख रहा था।

7.3.1 मिशनरी गतिविधि और आम लोगों का शत्रुताभाव

यह एक विडंबना है कि इस दौर में चीन और पश्चिमी ताकतों के आपसी संबंधों में कटुता पैदा करने वाला कारक पश्चिमी ताकतों की खुले आम होने वाली आर्थिक या सैनिक गतिविधियां नहीं, बल्कि विभिन्न मिशनरी व्यक्तियो और संगठनों की गतिविधियां थीं। इस दौर की शुरुआत और समाप्ति वास्तव में मिशनरियों और उनकी गतिविधियों को लेकर होने वाली झड़पों के साथ हुई।

पहले अफीम युद्ध के बाद, फ्रांस के साथ हुई वांपोआ की संधि द्वारा चीन में मिशनरी गतिविधियों को अनुमति मिली, और 1860 की त्येनसिन संधि से मिशनरियों को इस बात की अनुमति मिली कि वे चीन में कहीं भी रह सकते हैं। पश्चिमी राजनयिक और पश्चिमी सौदागर तो कुछ चुनिंदा बंदरगाहों के अंतःक्षेत्रों में या राजधानी पीकिंग में इकट्ठे रहते थे, लेकिन मिशनरी हर जगह फैल गए। यह बात कैथोलिक मिशनरियों के मामले में विशेष तौर पर सही थी। वे अधिकांश तौर पर छोटे कस्बों और गांवों में रहे, जहां वे स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप करते थे। वे स्वतंत्र रूप से सम्पत्ति हासिल करते थे और उन्हें 18वीं शताब्दी में जेसुइट मिशनरियों से जब्त की गई ज़मीनों पर फिर से अधिकार जमाने की अनुमति थी। उन्होंने स्थानीय निवासियों का धर्म परिवर्तन किया और उसके बाद उन्होंने धर्म बदलुओं के आपराधिक मामलों में अपने नियम लागू करने का भी प्रयास किया। उन्होंने स्कूल और अनाथालय भी खोले, जिन्हें स्थानीय लोग भारी शंका की दृष्टि से देखते थे, वे अक्सर यह सोचते थे कि मिशनरी उनके बच्चों का अपहरण कर रहे थे। स्थानीय लोग और अधिकारी मिशनरियों की इस बात से भी नाखुश थे कि वे हर बात पर
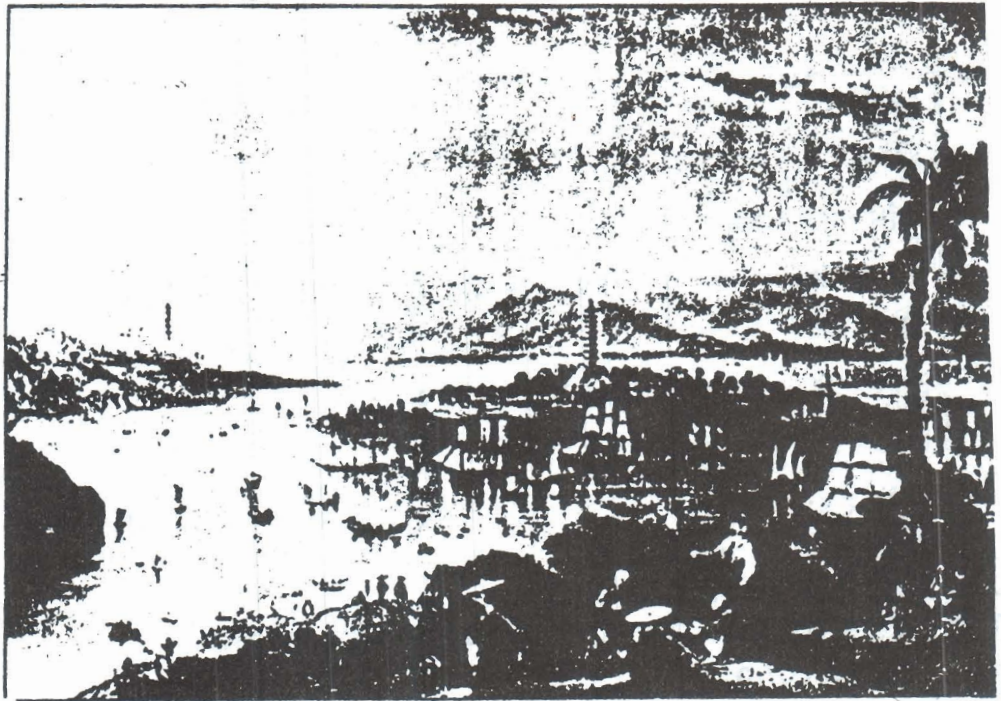
10. वांगपोआ का एक दृश्य

संरक्षण और समर्थन के लिए अपने देशों से आग्रह करते थे। चीन के किसी भी हिस्से में मिशनरियों और स्थानीय लोगों के बीच झगड़े की हालत में, विदेशी ताकतों की तोपनौकाओं का शक्ति प्रदर्शन के तौर पर नदियों में गश्त लगाना और भी आम हो गया। इस तरह, दो अफीम युद्धों के बीच में दौर में विदेशियों के प्रति आम लोगों में पाया जाने वाला जो शत्रुताभाव कैंटन के आसपास के क्षेत्र तक सीमित था, वह तेज़ी के साथ पूरे चीन में फैल गया। 1860 के दशक में ऐसे अनेक झगड़े हुए, जिनमें मार-पीट और हत्याएं हुई।

इसके परिणामस्वरूप 1870 में त्येनसिन का नरसंहार हुआ, जहां एक अनाथालय को लेकर हुए झगड़े में 21 विदेशी और लगभग 30 चीनी ईसाई मरे। एलकॉक अधिवेशन के रद्द होने के साथ यह घटना चीन-पश्चिमी संबंधों में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुई। चीन को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ी, उसे हर्जाने के तौर पर कोई पांच लाख ताएल भी देने पड़े।

त्येनसिन का नरसंहार मिशनरियों के मुद्दे पर होने वाला ऐसा अंतिम टकराव नहीं था। इस तरह के दंगे और झगड़े बार-बार हुए। उनमें से कुछ तो विशेष तौर पर गंभीर थे, जैसे 1886 में पश्चिमी चीन के सिचवान प्रांत में होने वाले दंगे, और 1891 में यांगसी नदी की घाटी पर होने वाले दंगे। यांगसी नदी की घाटी पर होने वाले दंगे के कारण तो मिली-जुली पश्चिमी ताकतें चीन का अतिक्रमण करते-करते रह गईं। क्योंकि चिंग सरकार के पूर्ण आत्म-समर्पण से यह स्थिति टल गई। चीनियों ने इस समर्पण को पसंद नहीं किया, उनमें चिंग विरोधी भावना और भी प्रबल हो गई, और वे इस बात को मज़बूती से मानने लगे कि चिंग शासक "गद्दार" थे जिनकी विदेशियों से सांठगांठ थी। इस तरह विदेश-विरोधी लहरें चिंग वंश को उखाड़ फेंकने के लिए होने वाले आंदोलनों से मिल गई। इन लहरों के इस तरह मिलने के कारण ही उत्तरी चीन में 1898-1900 का बॉक्सर विद्रोह हुआ। सत्ता छिनने के डर से, चिंग सरकार ने अपनी नीतियां ही बदल दीं और वह विदेशियों के खिलाफ विद्रोहियों का साथ देने लगी। फिर भी, विदेशी ताकतों की मिली-जुली सेनाओं ने जब उत्तरी चीन पर हमला बोला और एक बार फिर पीकिंग के एक बड़े हिस्से पर कब्जा करके उसे नष्ट कर दिया, तो चिंग सरकार ने फिर आत्म-समर्पण कर दिया। बॉक्सर विद्रोह में हुई भारी पराजय को यह दस साल और झेल गई, लेकिन अब उसकी स्थिति पहले जैसी नहीं रह गई थी। साम्राज्यवादी ताकतों ने चीन में अपनी पैठ और भी गहरी का ली। 1901 में मित्र ताकतों ने चीन पर जो बॉक्सर संधि थोपी उसकी अत्यधिक कठोर शर्तों ने चीन की आर्थिक वित्तीय और राजीतिक स्वाधीनता में और भी दरारें बना दीं।

7.3.2 चीन की सीमारेखा पर विदेशी दबाव

सन् 1870 के बाद, बड़ी ताकतें भी चीनी साम्राज्य की कीमत पर, क्षेत्रीय विस्तार में फिर से दिलचस्पी लेने लगीं। शुरुआत में, उनकी विस्तारवादी गतिविधियों का लक्ष्य चीन का मुख्य भाग नहीं था। वे चीन की सीमारेखा पर पड़ने वाले क्षेत्रों पर कब्जा करना चाहते थे, जिनपर

चिंग सरकार का प्रभावी कब्जा नहीं था (जैसे पश्चिम में सिक्यांग), या जिन्हें बहुत पहले से चीन का करद (केवल कर देने वाला) राज्य माना जाता था (जैसे वियतनाम और कोरिया) फिर भी, सीमारेखा पर पड़ने वाले इन क्षेत्रों को दी गई हर चुनौती का प्रभाव चीन की सुरक्षा और प्रतिष्ठा पर पड़ता था और उससे चीन की बढ़ती कमज़ोरी की और भी पोल खुलती थी।

इस दिशा में पहला कदम रूस ने उठाया। रूस ने 1871 में सिक्यांग के एक विद्रोह का लाभ उठाते हुए वहां के इसी क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। दस साल तक चले लंबे संघर्ष के बाद ही चिंग सरकार सेंट पीटर्सबर्ग की संधि के ज़रिए 1881 में इस क्षेत्र का अधिकांश कब्जा वापस ले पाई।

ठीक उसी दौर में, जापान ने चीनी तट पर के रयूक्यू द्वीपों और ताइवान के द्वीपों पर कब्जा करने का प्रयास शुरू किया। जापान ने 1874 में कुछ समय के लिए ताइवान पर कब्जा कर लिया। अंत में, 1875 में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसमें रयूक्यू द्वीपों पर जापान की प्रभुसत्ता को चुपचाप स्वीकार कर लिया गया। इस संधि में चीन जापान को 20 लाख डालर का हर्जाना देने को राज़ी हो गया।

इली और फारमूसा में रूस और जापान का कब्जा हो जाने के बाद चीन सीधे-सीधे लड़ाई में नहीं कूदा। लेकिन दस साल बाद, चीन ने वियतनाम (अन्नाम) को लेकर फ्रांस से लड़ाई की। वियतनाम एक अरसे से चीन का करद राज्य था। 1884-85 की चीनी-फ्रांसीसी लड़ाई चीन के लिए विनाशकारी रही। चीन को इसमें कोई हर्जाना तो नहीं देना पड़ा, लेकिन उन्हें औपचारिक तौर पर वियतनाम पर अपने सारे अधिकार छोड़ने पड़े। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह तथ्य था कि यह हार अपनी सैनिक क्षमता को आधुनिक तौर पर मज़बूत बनाने के चीन के दस साल के प्रयासों की स्पष्ट असफलता का प्रतीक थी। इस सीमित आधुनिकीकरण की असफलता ने कुछ चीनियों को आने वाले सालों में अधिक स्पष्ट सुधारों की वकालत करने को प्रेरित किया, जबकि 1911 की क्रांति के नेता, सन यात सेन जैसे अन्य लोगों का यह विश्वास था कि चीन को और शर्मनाक स्थितियों से बचाने के लिए चिंग सरकार को उखाड़ फेंकना ही आवश्यक था।

वियतनाम में अपनी जीत के बाद फ्रांस ने 1893 में लाओस को जीत लिया। ब्रिटेन ने भी कुछ क्षेत्र हथिया लिए, जिससे चीनी साम्राज्य की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया। उसने 1886 में बर्मा को अपने में मिला लिया। 1890 में सिक्किम को ब्रिटेन का संरक्षित राज्य बना लिया, और बाद में तिब्बत में भी पैंठ कर ली। रूस ने चीन की उत्तरी सीमा पर साइबेरिया को तेज़ी से अपना उपनिवेश बनाने का काम शुरू कर दिया।

इस बीच चीन का एक पुराना करद राज्य और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक रूप में उससे अत्यधिक प्रभावित कोरिया कुछ ताकतों का ध्यान केंद्र बन गया। अंत में, 1885 में एक चीनी-जापानी समझौते के ज़रिए जापान ने कोरिया के मामलों में हस्तक्षेप करने के अपने अधिकार को स्थापित करने का सफल प्रयास किया। चीन के पास कुछ अधिकार बने रहे, लेकिन अधिक समय तक नहीं। 1895 में, जब कोरिया के राजा के खिलाफ एक विद्रोह के दौरान चीनी और जापानी दोनों सेनाओं ने हस्तक्षेप किया तो जापानियों ने चीनी सेनाओं की वापसी की मांग की। इसके परिणामस्वरूप एक लड़ाई हुई, जिसमें चीनियों की बुरी तरह से हार हुई और उनकी आधी आधुनिकीकृत नौसेना नष्ट हो गई। उसके बाद होने वाली शिमोनोसेकी संधि में चीन को बहुत ही शर्मनाक शर्तों को मानना पड़ा, जिनमें कोरिया, ताइवान और पेस्काडर्स द्वीपों में चीन के तमाम अधिकारों का पूर्ण त्याग शामिल था। इससे भी महत्वपूर्ण था लियाओदोंग प्रायद्वीप का समर्पण, जो मंचूरिया का हिस्सा था। अंत में, जापान को रूस, जर्मनी और फ्रांस के दबाव में लियाओदोंग को लौटाना पड़ा। इन ताकतों का यह दबाव डालना जापान के साथ उनकी अपनी शत्रुता से प्रेरित था। जो भी हो, इन तीन ताकतों के हस्तक्षेप की भारी कीमत चीन को इन ताकतों को और रियायतें देकर चुकानी पड़ीं। इसके कारण तमाम बड़ी ताकतों में "रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की वास्तविक स्थिति बनी, जिसके चलते साम्राज्यवादी ताकतों के हाथों चीन को और भी अपमान तथा शोषण के दिन देखने पड़े।

7.4 रियायतों के लिए भगदड़

शुरुआत में चीन में पश्चिमी ताकतों का आर्थिक हित व्यापार था, और अफीम युद्धों के बाद भी व्यापार ही उनका प्रमुख हित बना रहा। संधिगत बंदरगाहों में विदेशी ताकतों ने जो

रियायतें हासिल कीं उनका उद्देश्य चीन में अपने पांव जमाना इतना नहीं था, जितना कि विदेशी व्यापार की प्रगति को सुगम बनाना। फिर भी, इस व्यापार के विकास के साथ-साथ विदेशियों की अन्य आर्थिक गतिविधियों का भी विकास हुआ। शुरुआत में, बैंकिंग और शिपिंग जैसी ये आर्थिक गतिविधियां व्यापार से करीबी तौर पर जुड़ी थीं। पहला विदेशी बैंक ब्रिटिश-चार्टर्ड बैंकिंग कारपोरेशन था, जिसकी स्थापना 1845 में हांगकांग में और 1848 में शंघाई में हुई। पहली विदेशी शिपिंग कंपनी शंघाई स्टीम नेवीगेशन कंपनी थी, जिसकी स्थापना 1862 में अमेरिकियों ने की।

बहरहाल, 1860 के बाद विदेशी कंपनियों ने निर्माण के काम में भी हिस्सा लिया। 1894 तक विदेशी उद्योग उपक्रमों की संख्या 87 से भी अधिक हो गई थी, जिनमें कुल एक करोड़ तीस लाख तैल की पूंजी लगी थी और 34,000 व्यक्ति काम कर रहे थे। शुरुआत में, ये कंपनियां मुख्य तौर पर जहाज़ निर्माण और उनकी मरम्मत तथा निर्यात के लिए सामान तैयार करने में लगी थीं। लेकिन जल्दी ही उन्होंने चीन के अंदर ही बिक्री के लिए सामान के उत्पादन का काम भी शुरू कर दिया। चीन में बिक्री के लिए स्थानीय तौर पर सामान बनाना विदेशी कंपनियों के लिए सीमा शुल्क बचाने और सामान ढोने का खर्च कम करने का एक तरीका था। भारी पूंजी, विशेष अधिकार और प्रौद्योगिक श्रेष्ठता हासिल होने के कारण, इन विदेशी कंपनियों को चीनी निर्माताओं की ओर से बहुत कम प्रतिस्पर्धा का सामना करना होता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम पच्चीस वर्षों में साम्राज्यवाद के बढ़ने के साथ, साम्राज्यवादियों की उनकी पूंजी के नए निकासों की इच्छा में भी खूब बढ़ोत्तरी हुई। उन्हें चीन निवेश के लिए एक विशाल और अछूता क्षेत्र दिखाई दिया। विदेशी उद्योगपतियों और बैंकरों में हाइड्रोलिक निर्माण, किलेबंदियां बनाने, और हथियारों के जहाज़ों का प्रबंध करने, रेलगाड़ी की पटरियां बिछाने और खानें खोलने आदि के लिए चीनी सरकार से ठेके हासिल करने के लिए जबरदस्त होड़ होने लगी। चीनी सरकार और दूसरे देशों के अपने प्रतिस्पर्धियों से मज़बूत स्थिति में होने के लिए, एक देश की कंपनियों ने सिंडीकेट बनाने शुरू कर दिए, जिनका काम किसी परियोजना से संबंधित तमाम मामलों को संभालना था — अर्थात् इस परियोजना के लिए वित्त की व्यवस्था करने से लेकर, तकनीकी विशेषज्ञता और कर्मचारियों का, और तमाम आवश्यक उपकरणों का भी प्रबंध करना।

चीनी अर्थव्यवस्था में साम्राज्यवाद की घुसपैठ में 1894-95 के चीन-जापान युद्ध के बाद नाटकीय वृद्धि हुई। चीनी सरकार की कमज़ोरी का इस्तेमाल करके अधिक से अधिक रियायतें हासिल कर लेने के लिए किया गया। जापान के उदाहरण का अनुसरण करते हुए युद्ध के बाद चीन की ओर से प्रकट रूप में हस्तक्षेप करने वाली तीन ताकतों — रूस, फ्रांस और जर्मनी — ने भी विशेष विशेषाधिकारों और रियायतों की मांग की। उन्होंने "अधिकार" के तौर पर यह मांग की कि उन्हें चीन के उन हिस्सों में रेलगाड़ी की पटरियां बिछाने, कारखाने तथा खानें खोलने की अनुमति दी जाए जहां उनके अनुसार उन्हें विशेष प्रभाव का अधिकार था। जापान की तरह, रूस ने मंचूरिया में रियायतों की मांग और प्राप्ति की। फ्रांस की दिलचस्पी यूनान, गुआंगशी और गुआंगडांग के दक्षिण प्रांतों में थी, जबकि जर्मनी पूर्वी तटीय क्षेत्र शानडांग में दिलचस्पी रखता था। ब्रिटेन ने भी पीछे न रहते हुए, हांगकांग और यांगसी नदी घाटी से लगे हुए क्षेत्रों, वाईहाईवाई के बंदरगाह में रियायतें मांगीं और हासिल कीं। सामान्य बात की जाए तो बड़ी ताकतों ने इन रियायतों को हासिल करने और अपने प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने के लिए जिस तरीके का इस्तेमाल किया, वह था क्षेत्रों को एक लंबे समय (जैसे 99 साल) के लिए "पट्टों" पर लेना, जिस दौरान चीनी सरकार का उन क्षेत्रों पर कोई अधिकार नहीं रहना था, जबकि इस अवधि में संबंधित विदेशी ताकत का उस क्षेत्र पर पूरा कब्जा रहता। इसमें उन क्षेत्रों में अपने पुलिस बल तैनात करने का अधिकर भी शामिल था या, संबंधित विदेशी ताकत चीनी सरकार से यह वचन ले लेती कि वह और किसी देश को उन क्षेत्रों में अधिकार नहीं देगी।

"रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की रफ्तार इतनी तेज थी कि शताब्दी का अंत होते-होते चीन एक ऐसे बड़े तरबूज की तरह हो गया था, जिसे दूसरों के मज़े के लिए फांक-फांक कर दिया गया था। इनमें से हरेक फांक का वास्तविक स्वामी एक विदेशी ताकत थी। इस बात का निर्णय यह विदेशी ताकत करती थी कि उसके अपने भाग में किस रेलपथ का विकास करना चाहिए, और इसके पीछे उसके अपने लाभ के अलावा और कोई लेना-देना नहीं होता था। ये ताकतें फिर — चीनी सरकार का कोई हवाला दिए बिना — आपस में ही ये समझौते कर लेती थीं कि वे एक-दूसरे के प्रभाव-क्षेत्रों का सम्मान करेंगी। अमेरिकियों को तो कोई रियायत नहीं मिली हुई थी, लेकिन उन्होंने भी जब तमाम ताकतों के साथ यह समझौता

किया कि वह उनके प्रभाव-क्षेत्रों में व्यापार, संधिगत बंदरगाहों और सीमा-शुल्क सेवा के समान अवसर का सम्मान करेंगे तो उन्होंने भी इस समझौते में चीनी सरकार को शामिल करने की कोई चिंता नहीं की। न ही उन्होंने चीन में इन देशों के अपने प्रभाव-क्षेत्र या रियायतें होने पर कोई सवाल उठाया। यह 1900 की तथाकथित मुक्त नीति थी।

"रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की एक और महत्वपूर्ण विशेषता थी विदेशी ताकतों द्वारा चीनी सरकार को दिए गए ऋण। 40 करोड़ फ्रांक के ऐसे ऋण के लिए पहला समझौता फ्रांको-रशियन बैंकिंग कारपोरेशन ने हासिल किया, ताकि चीनी सरकार उसके ऊपर जापान द्वारा 1894-95 के युद्ध के बाद थोपे गए हर्जाने को लौटा सके। दूसरी ताकतों ने भी और ऋण देकर इस उदाहरण का तुरंत अनुसरण किया। 1896 में ब्रिटिश और जर्मन बैंकों ने चीनी सरकार के द्वारा जापान को दिए जाने वाले हर्जाने की दूसरी किस्त चुकाने के लिए एक और ऋण का अनुबंध लिया। इस ऋण की शर्तें चीनियों के लिए और भी प्रतिकूल थीं। इस ऋण की न केवल ब्याज दर ही अधिक थी, बल्कि इसमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया था कि चीन को 36 साल पूरे होने से पहले पूरा ऋण अदा नहीं करने दिया जाएगा और विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय के प्रशासन में कोई बदलाव भी नहीं करने दिया जाएगा क्योंकि राजस्व का एक हिस्सा ऋण की जमानत के तौर पर रखा गया था।

इन ऋणों के जरिए चीन पर साम्राज्यवादियों का वित्तीय और आर्थिक शिकंजा इतना कस गया कि चीन उससे फिर निकल नहीं सका। शताब्दी के अंत तक, सीमा-शुल्क से मिलने वाला वह सारा राजस्व, वह सारा धन, जिसका इस्तेमाल कभी चीन की प्रतिरक्षण शक्ति और दूसरे क्षेत्रों को आधुनिक बनाने के लिए किया गया था, अब उसका इस्तेमाल बस ऋणों की अदायगी के लिए हो पाता था। इसके अलावा, ऐसा हरेक ऋण देने वाले के लिए अत्यंत लाभकारी होने के बावजूद चीनी सरकार पर एक अहसान माना जाता था, जिसके बदले में विदेशी ताकत और अधिक रियायतों और दूसरे विशेषाधिकारों की अधिकारी होती थी। इस तरह, आर्थिक शोषण का एक अत्यधिक जटिल जाल या तंत्र बना लिया गया था।

विदेशी साम्राज्यवादियों के हाथों चीन को किस हद तक अपमान और अधीनता का शिकार होना पड़ा था, इसका अंदाज़ा केवल चीनी सरकार और विदेशी सरकारों के बीच हुई औपचारिक संधियों से नहीं लगाया जा सकता। चीन ने विभिन्न विदेशी बैंकों, सिंडीकेटों आदि के साथ जो आर्थिक अनुबंध तथा समझौते किए, उन्होंने भी चीन की प्रभुसत्ता और स्वाधीनता की जड़ें कम नहीं खोदीं। विदेशी अनुबंध करने वाले पक्ष शक्तिशाली आर्थिक समूह थे, जिन्हें अपने देश की सरकारों का पूरा समर्थन मिला हुआ था। चीन साम्राज्यवादियों के साथ पूरे स्तर के युद्ध में अपने आपको घसीटे बिना इन समझौतों से मुकरने का खतरा नहीं उठा सकता था। इस तरह, 1911 में चिंग सरकार का तख्ता उखड़ जाने के बाद भी, उसके बाद की सरकारों ने कई सालों तक विदेशी ताकतों के साथ कई संधियों या आर्थिक समझौतों को रद्द नहीं किया, और ये विदेशी ताकतें और तीन दशकों तक आर्थिक तथा राजनीतिक स्तर पर चीन पर हावी रहीं।

बोध प्रश्न 2

1) लगभग दस पंक्तियों में उन स्थितियों का विवरण दीजिए, जिनके कारण "रियायतों के लिए होड़ या भगदड़" की स्थिति बनी।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) लगभग दस पंक्तियों में 1884-85 के चीन-फ्रांस युद्ध के परिणामों के बारे में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित में से कौन-से सही (√) हैं, और कौन-से गलत (×)? निशान लगाइए :

i) त्येनसिन की संधि में मिशनरियों को चीन में कहीं भी रहने और अपनी गतिविधियां करने की अनुमति दी गई।

ii) 1990 की मुक्त नीति समझौते में चीनी सरकार को भी शामिल किया गया।

iii) पहली विदेशी कंपनी 1862 में जापान ने शंघाई में स्थापित की।

iv) 1860 से 1911 तक चीन की आर्थिक, राजनीतिक और क्षेत्रीय स्वाधीनता की जड़ें साम्राज्यवादियों ने खोदीं।

7.5 सारांश

चीन ऐसा उपनिवेश कभी नहीं बना जिसपर किसी एक ताकत का सीधे-सीधे शासन हो। इसे एक "अर्ध-उपनिवेश" या "अति-उपनिवेश" (कई ताकतों की उपनिवेश) बताया गया है। इससे साम्राज्यवादियों के हाथों चीन की अधीनता बिल्कुल अनूठी रही।

सन् 1860 से 1911 की क्रांति तक के पचास वर्षों में चीन की आर्थिक, राजनीतिक और क्षेत्रीय स्वाधीनता को साम्राज्यवादियों ने लगातार तोड़ा। विदेशी अतिक्रमों के साथ संधियां हुईं जिनमें चीनी सरकार एक के बाद एक रियायत देती चली गई। अनेक अनुबंध और आर्थिक समझौते भी विभिन्न विदेशी कंपनियों और बैंकों के साथ हुए। लेकिन, इन संधियों और समझौतों का आर्थिक पक्ष इतना महत्वपूर्ण नहीं था, जितनी कि चीनी साम्राज्य की वास्तविक सैनिक और आर्थिक कमज़ोरी। इसी कमज़ोरी के कारण चीन इन संधियों और समझौतों से बिल्कुल बंध गया। कई दशकों की क्रांतिकारी उथल-पुथल के दौरान फिर से सैनिक और राजनीतिक शक्ति हासिल कर लेने के बाद ही कहीं चीन विदेशी ताकतों की अधीनता से मुक्त हो सका।

7.6 शब्दावली

विदेशी रियायती क्षेत्रः संधिगत बंदरगाहों के वे क्षेत्र, जिनमें विदेशी रहते थे।

चीनी राजकताः चीनियों और विदेशियों द्वारा संयुक्त प्रशासन।

मिशनरीः विदेशों में ईसाई धर्म का प्रचार करने और लोगों को ईसाई बनाने के उद्देश्य से भेजे गए ईसाई पुरोहित।

तैलः चीनी मुद्रा।

करद राज्यः चीन को कर देने वाले राज्य।

सिंडीकेटः किसी एक देश के बैंकों अथवा उद्योग संस्थानों का समूह, जिसका काम चीन में ली गई परियोजनाओं में सहयोग करना था।

7.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपके उत्तर में ये बातें शामिल होनी चाहिएं:
   क) संधिगत बंदरगाह और विदेशी रियायतें, ख) विदेशी सीमा-शुल्क निरीक्षणालय, ग) वाणिज्यदूतीय अदालतें, घ) ज़ोंगली यामेन। देखिए उपभाग 7.2.1. और 7.2.2

2) आपके उत्तर में सीमा-शुल्क का जमा करना शामिल होना चाहिए।

3) i) √ ii) √ iii) √ iv) ×

बोध प्रश्न 2

1) आपके उत्तर में निम्न बातें शामिल होनी चाहिए :
   - सहयोग की नीति का असफल रहना
   - विदेशी ताकतों द्वारा क्षेत्रीय अतिक्रमण, मिशनरियों के मुद्दे पर बड़ी ताकतों और चीन में बढ़ते टकराव
   - साम्राज्यवादियों में उनकी पूंजी के लिए निकासों और नए बाज़ारों को लेकर प्रतिद्वंदिता। देखिए 7.3

2) अपने उत्तर के लिए उपभाग 7.3.2. को आधार बनाइए।

3) i) √ ii) × iii) × iv) √